ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 26 | अंक 01 | विक्रम संवत् 2077-78 जनवरी 2022 | पृष्ठ 34

संरक्षक : विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Narayan

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 26 | अंक 01 | विक्रम संवत् 2077-78 जनवरी 2022 | पृष्ठ 34

परामर्शदाता
देवर्षि कलानाथ शास्त्री
पण्डित अनन्त शर्मा
डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
सोहन लाल गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रामदेव साहू
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

सहयोग
नवीन जोशी
आनन्द शर्मा

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्त्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
(जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

Sponsored by : **DEVESHWAR DEEP IMPEX PVT. LTD.**, JAIPUR

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	3
2.	प्राचीन भारत में राष्ट्रचेतना	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	4
3.	भारतीय संस्कृति का विश्वसंचार : केदाह या केदारम्	डॉ. डी.सी. चौबे	9
4	शीत ऋतु में स्वास्थ्यसंरक्षण	प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड़	17
5.	संकल्प की पूर्णता	सीताराम गुप्ता	23
6.	गाँधीजी की प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति आस्था	वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'	26
6.	पदार्थविज्ञान एवं परमाणुवाद	डॉ. रामदेव साहू	29
9.	राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	31

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111

IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2022 का प्रथम अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

इस अंक में सर्वप्रथम देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा लिखित ''प्राचीन भारत में राष्ट्रचेतना'' विषयक लेख में राष्ट्रिय एकता एवं उसके सांस्कृतिक तथा पौराणिक आधारों पर राष्ट्रभक्ति सन्दर्भित चिन्तन प्रस्तुत हुआ है। तत्पश्चात् डॉ. डी.सी. चौबे द्वारा लिखित 'भारतीय संस्कृति का विश्वसंचार : केदाह या केदारम्' में भारत से बाहर विद्यमान भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्रोतों पर ऐतिहासिक उपलब्धियों का प्रस्तुतीकरण किया गया है। प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड़ एवं डॉ. विश्वावसु गौड़ द्वारा लिखित ''शीत ऋतु में स्वास्थ्यसंरक्षण'' जन सामान्य के लिए स्वास्थ्य चेतना का सम्प्रेरक है तथा स्वास्थ्य संरक्षण के उपाय रूप में विविध ओषधीय प्रयोगों की उपयोगिता को प्रदर्शित करता है। श्री सीताराम गुप्ता द्वारा लिखित 'संकल्प की पूर्णता' लेख में जनसामान्य को दृढ़तापूर्वक सांसारिक द्वन्द्वों से संघर्ष की प्रेरणा सद्भावनाओं के संरक्षण को विज्ञापित करती है। वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' द्वारा लिखित 'गाँधीजी की प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति आस्था' लेख में अहिंसा सत्य एवं आस्था की बलवती शक्ति के परिणाम को दर्शाया गया है। प्रो. रामदेव साहू द्वारा लिखित 'पदार्थविज्ञान एवं परमाणुवाद' में वेद एवं भारतीयदर्शन की चिन्तनधारा की वैज्ञानिकता दर्शायी गयी है। अन्त में डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के 'राष्ट्रोपनिषत् प्रस्तावनाशतकम्' के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्यपरम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

शुभकामनाओं सहित....

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

प्राचीन भारत में राष्ट्रचेतना

देवर्षि कलानाथ शास्त्री
(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

भारत में जो स्वतंत्रता संग्राम लड़ा जा रहा था, उसके पीछे विदेशों की दासता से मुक्ति का उद्देश्य तो था ही, उसमें तीव्रता इस भावना ने निखारी थी, कि एक ऐसा देश अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के लिए लड़ रहा है, जो विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम संस्कृति और गरिमा का धनी देश है। पूरे देश में एकजुटता और राष्ट्रीय एकता की यह उद्दाम भावना क्या मुगल आक्रमणों के बाद पनपी, जैसा कि कुछ विद्वान् मानते हैं, क्या यह राष्ट्र चेतना हमारी प्राचीनतम थाती है? वस्तुस्थिति तो यह है कि इस देश के विभिन्न धर्मों, भाषाओं और रहन-सहन के तरीकों में बँटे होने पर भी एक तरह की सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय एकजुटता के सूत्र प्राचीनतम काल से ही इसे बाँधे हुए हैं, किसी विदेशी आक्रमण की प्रतिक्रिया के कारण नहीं जन्मे हैं।

यही कारण है कि जब हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी, युगों-युगों की उस राष्ट्रचेतना को नयी संजीवनी ही मिली थी, नये सिरे से किसी राष्ट्र का उद्भव नहीं हुआ था, जैसा अन्य अनेक परतन्त्र देशों के स्वतंत्र होने पर हुआ। हमारी इस प्राचीन राष्ट्र-चेतना का आकलन वस्तुतः एक प्रेरणादायी अनुभव है । गणतंत्र दिवस 1950 को लागू हुए संविधान ने उसी राष्ट्रचेतना को अपनी उद्देशिका (प्रिएंबिल) में मूर्त रूप दिया था।

स्वदेश अथवा मातृभूमि के लिए भक्ति एक ऐसी भावना है, जो उन देशों के निवासियों में ही पायी जाती है जो अपने राष्ट्र, अपने इतिहास और अपने अतीत पर गर्व रखने की परंपरा में पोषित है। विद्वानों का मानना है कि राष्ट्रीयता का जज्बा कुछ विशिष्ट कारणों से पैदा होता है, जिससे देश के निवासियों में यह अहसास हो, कि उनके देश की एक सामान्य संस्कृति है, एक इतिहास है जो सबने समान रूप से विरासत में पाया है। उस देश के लोगों में ही राष्ट्रभक्ति की

तीव्र भावना पायी जा सकती है। भौगोलिक दृष्टि से बिखरे हुए ऐसे देशों में जिनका कोई इतिहास नहीं है, राष्ट्र-भक्ति की भावना नहीं हो सकती।

वेदकाल में -

इस लिहाज से भारतवर्ष देश-भक्ति की भावना का सर्वाधिक धनी देश रहा है, यह कहना अत्युक्ति न होगा। प्रागैतिहासिक काल से ही किसी न किसी रूप में इस देश में देश-भक्ति की भावना पायी जाती है। पूर्ववैदिक काल में देश का उतना विशाल और सुगठित रूप नहीं था, जो आज है। उस समय जब हमारी संस्कृति शैशव काल में थी, आर्यों ने अपने गणराज्यों की स्थापना की ही थी। उस समय अलग-अलग राज्य होने के कारण एक 'समान संस्कृति' या राष्ट्रीयता की भावना उतनी बद्धमूल नहीं हो पायी थी, फिर भी ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम लिखित ग्रंथ है, के समय से ही अपनी धरती के प्रति मोह और प्रेम की भावना के उद्भव के संकेत मिलने लगते हैं।

उस समय का ऋषि अपनी धरती पर बसंत और वर्षा जैसी ऋतुओं का मनोरम नृत्य देखता था, अपने देश के स्वर्णिम उषाकाल को देख कर आत्म-विभोर होता था, सूरज की प्राणदायिनी गर्मी से धरती, अपनी नदियों और अपने देश से लगाव अनुभव करता था। अथर्ववेद के समय तक आते-आते इस देश में एक समान संस्कृति, समान इतिहास और समान अतीत का गौरव भी प्रकट होने लगा था। अपने नेताओं और पूर्वजों का एक ऐसा इतिहास उस समय था जिस पर सब समान रूप से गर्व कर सकते थे। राष्ट्रीयता की भावना का यह अंकुरारोपण था। अथर्ववेद का 'पृथ्वी-सूक्त' अपनी धरती से लगाव का अनूठा उदाहरण है। देशवासी कहता है - मैं धरती का बेटा हूँ, उस धरती का जिसका मध्य, जिसका अन्तराल सब कुछ ऊर्जा से भरा हुआ है, जो पर्जन्य अर्थात् वर्षा से अन्न पैदा करके हमें जीवन देती है। इसलिये धरती मेरी माँ और पर्जन्य पिता है -

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।

तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिःपुत्रोऽहं पृथिव्याः ।

पर्जन्यः पिता, स उ नः पिपर्तु ।

अथर्ववेद के ऋषि ने भी अपने इतिहास पर इन शब्दों में गर्व व्यक्त किया है -

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।

जिस पृथ्वी पर हमारे पूर्वजों ने असुरों पर विजय प्राप्त की, जहाँ पर गायें, घोड़े और पशु-पक्षी हमारी सम्पत्ति के रूप में हमें समृद्ध बनाये हुए हैं, वह पृथ्वी हमें सदा सबल रखे।

राष्ट्रीयता की भावना तभी से बद्धमूल होने लगी। एक अन्य प्रार्थना इसी सूक्त में है। **'हे भूमि हमारे देश पर जो द्वेष-दृष्टि रखते हैं, जो इस पर आक्रमण या हत्या की योजना बनाते हैं, उन्हें तुम नष्ट कर दो'-**

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यात् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।

तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि।

पुराणकाल में -

अथर्ववेद के काल तक भी यह देश छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ ही था। एक समान राष्ट्र की तीव्र निष्ठा की भावना उस समय से अधिक पनपने लगी, जब अशोक के समय में सारा राष्ट्र एक झण्डे के नीचे आया और राजनीतिक एकता के कारण सारा भारत एक ईकाई के रूप में दृढ होने लगा। यह माना जाता है कि पुराणों का वर्तमान स्वरूप अशोक के समय से ले कर गुप्तकाल तक निर्मित हुआ। इन पुराणों में भारतवर्ष के रूप में एक देश की भावना, राष्ट्र-भक्ति और गौरवमय इतिहास पर गर्व स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। इससे पूर्व मनुस्मृति ने भी अपने देश की ज्ञान सम्पत्ति पर गर्व करते हुए लिखा था, कि इस देश के विद्वान् सारी पृथ्वी के मानवों को अपने-अपने कर्तव्य और अपने-अपने इतिहास की शिक्षा दे सकते हैं :-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।

विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण में भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता इन शब्दों में बतलायी गयी है :-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ।
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद-मार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।

'हिन्द महासागर से उत्तर में और हिमालय से दक्षिण में जो देश है वह भारतवर्ष है, जिसमें भारत की संतति निवास करती है। स्वर्ग के देवता भी सदा यह गाते रहते हैं, कि भारत के निवासी धन्य हैं जहाँ उत्कृष्ट संस्कृति के कारण मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष सब कुछ प्राप्त कर सकता है। देवता सदा यह ललक लिये रहते हैं, कि हम कब भारत में जा कर जन्म लेंगे।

अपनी जन्मभूमि के प्रति उद्दाम भक्ति की यह भावना तब से अब तक बनी हुई है। रावण पर विजय प्राप्त कर रामचन्द्र सारी लंका पर अपना दबदबा स्थापित कर देते हैं। लंका सोने की मानी जाती है अर्थात् भौतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध देश। रामचन्द्र के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा गया, कि वे इस समृद्ध देश पर शासन करें, किन्तु रामचन्द्र ने साफ कहा कि लक्ष्मण चाहे लंका सोने की ही हो, किन्तु यहाँ का राज्य मुझे पसन्द नहीं। मुझे लौटना ही होगा। जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर होती है । इस श्लोक का दूसरा हिस्सा बहुत प्रसिद्ध है -

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

हमारा संकल्प

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है, कि अपने देश के प्रति गौरव और राष्ट्रभक्ति का इतिहास इस देश में बहुत पुराना है। देश भक्ति की यह भावना परवर्ती साहित्य में उत्तरोत्तर वर्धमान रूप से पायी जाती है। शंकराचार्य जैसे लोकनायकों ने समूचे देश में एक सुघटित इकाई के रूप में सांस्कृतिक एकता स्थापित करने के लिए कोने-कोने पर मठ बनाए और चारों कोनों में चार धाम धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बतलाए। उनकी तीर्थयात्रा को पावनता प्रदान की, जिससे देशवासियो में अपने देश के प्रति भक्ति पनपे और एकता सुदृढ हो।

अपने देश के प्रति गौरव की इस भावना को धर्म के आँचल से ढक कर जन-जीवन में अनजाने ही घुला-मिला देने की घटना भी विश्व-संस्कृति में अभूतपूर्व है। हमारे प्रत्येक धार्मिक कार्य के पहले जो संकल्प बोला जाता है, उसमें इस देश और काल का पूरा विवरण होता है। जम्बूद्वीप के मध्य भारत और उसमें आर्यावर्त का उल्लेख कर हम प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में उस गौरव का स्मरण करते हैं।

देशभक्ति की यह भावना इतनी प्रबल है, कि विद्वान् लोग यजमान को आशीर्वाद देते समय तथा शुभ कार्य के अन्त में जो मंत्र बोलते हैं, उसमें उस व्यक्ति की शुभ-कामना तो थोड़ी सी होती ही है, अधिकांश समूचे राष्ट्र की शुभ-भावना होती है। यह शुभकामना है इस राष्ट्र के प्रबुद्धजन विद्वान् एवं तेजस्वी हों, योद्धा रणबाँकुरे और महारथी हों, गायें दुधारु हों, बैल मजबूत, घोड़े तीव्रगामी, स्त्रियाँ सुन्दर, प्रशासक विजयी और युवक सभ्य हों। जब-जब हम चाहें धरती पर मेघ बरसे, फसलें भरपूर हों और सारे देश में सुख-चैन रहे'। यजुर्वेद का यह मंत्र मंगलकामना के रूप में सारे देश में बोला जाता है -

आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्र राजन्यः शूर
इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।।

दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।।

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्त्यो न ओषधयः पच्यन्तां
योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

भारतीय संस्कृति का विश्वसंचार : केदाह या केदारम् (मलयदेश-मलेशिया) में हिन्दू साम्राज्य

डॉ. डी.सी. चौबे
सह-आचार्य, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, उच्चैन (भरतपुर)

बाबा साहेब आप्टे के सपनों की अ. भा. इ. संकलन योजना अबाध गति से नये क्षितिजों को खोलती हुई, इन्हें और विस्तृत करती हुई और नित नये सोपानों को चढ़ती हुई आगे बढ़ रही है । योजना इतिहास के उन अनछुए विषयों और पन्नों को खोल रही है, जिसे जान बूझ कर इसलिए नहीं खोला गया है, कि भारतीयों में गौरव और राष्ट्रीय दर्प का संचार हो जाएगा । परन्तु खुशी की बात है, कि विदेशों में बिखरे पड़े हमारे पूर्वजों की उपलब्धियों को सहेजने, संरक्षित करने और उन्हें लिपिबद्ध कर वर्तमान पीढ़ी के सामने प्रस्तुत करने के उद्यम और उपक्रम में हम सभी जुट गए हैं।

चलते चलते मैं यह सुझाव देना चाहूँगा, कि हमें ऐसा ही प्रयास मध्य-एशिया और चीन के भारतीय महापुरुषों, पदार्थ-वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, वास्तुशास्त्रियों, साहित्यकारों और अनुवादकों के अवदानों पर भी एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित करनी चाहिए। यह एक विशाल कलेवर और व्यापकता वाला विषय है, जिसमें सैकड़ों भागों में ग्रंथों की रचना की जा सकती है, परन्तु आज इस शोध पत्र में मैं मलयद्वीप के केदाह में पल्लवित और पुष्पित हुए प्राचीन भारतीय हिन्दू साम्राज्य के इतिहास और संस्कृति पर प्रकाश डालूँगा। मेरा यह शोधपत्र महान् इतिहासकारों प्रो. आर. सी. मजूमदार, प्रो पी. सी. बागची, प्रो के. एम. पणिक्कर और चीनी मूल के दो महान इतिहासकारों, प्रो. जि शियाचिन और प्रो. तानचुंग को नमन स्वरूप है, जो अपनी किताबों में लिखते हैं- India is the Maker of Ancient China and countries of South East Asia, अर्थात् भारत चीन और दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों की सभ्यता का निर्माता देश है। प्रो. के.एम.पणिक्कर ने लिखा है कि एशिया में भारत ने सर्वत्र ज्ञान की रश्मियाँ बिखेरी है। वायुपुराण में वर्णन आता है कि .....''सागर से घिरा हुआ द्वीप है''

''जहाँ रजत और सुवर्ण की खानें हैं'', जहाँ कल कल करती नदियाँ हैं और चन्दन के वन हैं। जहाँ से आने वाली प्रात: काल की हवा सम्पूर्ण भारत को मलय बयार बनकर स्वस्थ रखती है। जहाँ सुविख्यात महामलय और मन्दार पर्वत हैं। जहाँ पर देव असुर दोनों अगस्ति को नमन करते हैं'' । यही मलयद्वीप है । इसी मलय द्वीप पर केदाह राज्य का विस्तार हुआ था। भारतीय साहित्य में द्वीपांतर शब्द इन्हीं स्थानों की यात्रा के लिए प्रयुक्त होता था ।

केदाह को केदारम्, किदारम् केताह और केलागम के नाम से संस्कृत और तमिल साहित्य में उल्लेख किया गया है। चेचा और केचा के नाम से चीनी स्रोतों में उल्लेख मिलता है। केदाह साम्राज्य की स्थिति मलाया प्रायद्वीप में इस प्रकार से थी, कि यह मलक्का जल अभिसंधि के द्वार पर ही पड़ता है। यह श्रीलंका के ठीक पूर्व में विषुवत् रेखा से 6 डिग्री उत्तर अक्षांश पर स्थित है[1]। इन द्वीपसमूहों के लिए सुवर्णद्वीप शब्द आया है। भूमि मार्ग से मलाया जाने में सर्वप्रथम बर्मा (ब्रह्मदेश), थाइलैण्ड (श्याम), कम्बोडिया (कंबोज),चम्पा, वियतनाम और इनके दक्षिण में सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, फिलिपिन्स हैं ।

वाल्मीकीय रामायण में इण्डोनेशिया को जावा और मलेशिया को 'सुवर्ण रूप्यक' कहा गया है। यह रोम, अरब, भारत और चीन के सामुद्रिक व्यापार के मार्ग पर स्थित था। यहाँ से इन देशों के मालवाहक जहाज हजारों की संख्या में गुजरते थे और लंगर भी डालते थे । इन मार्गों से गरम मसालों, सूती और रेशमी वस्त्रों तथा घोड़ों और बेशकीमती सामानों का व्यापार होता था। यह साम्राज्य 7वीं शताब्दी तक फलता फूलता रहा।[2] केदाह के इतिहास की जानकारी हमें संस्कृत, तमिल और चीनी साहित्य में मिलती है। अब भुंजग घाटी की खुदाई से प्राप्त अवशेषों में केदाह का इतिहास प्राप्त हुआ है। केदाह के इतिहास के बारे में मलयद्वीप की इतिहासगाथा और लोकपरम्परा कहती है, कि आज से 2400 वर्ष पूर्व में पाटलिपुत्र का एक राजकुमार ताम्रलिप्ति होता हुआ मलाया आया जिसका नाम था, मरोड। मरोड का मलयवासियों ने पहले तो विरोध किया, परंतु बाद में उसने अपनी अच्छाईयों से उनका मन जीत लिया और 'लंकाशुक' नामक नगर बसाया । उसने मलय द्वीप में कई विद्यालय और मन्दिर बनवाए और वहाँ की भाषा एवं लिपि का विकास किया । यह नगर राजा भगदत्त के समय धनधान्य से सम्पन्न था । चन्दन और कपूर का यहाँ से व्यापार होता था और आगे के 700 वर्षों तक यह राज्य और इसके नगर स्वतंत्र और समृद्ध रहे। (Wintedt,Richard,Notes on History of Kedah,Journal of the Malayan Branch of Royal Asiatic Society,14[3 (126)]:155-189.)

हिकायत मेरोंग महावंगसा से इसके प्राचीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। सातवाहन काल के गुणाढ्य बृहत्कथा में लिखते हैं कि चन्द्रस्वामी का पुत्र और उसकी छोटी बहन कहीं खो गए। जब वह खोज में निकला तो उसे ज्ञात हुआ कि वे लोग एक व्यापारी के पास हैं । वह वहाँ से नारिकेल द्वीप गया। फिर नारिकेर या नाडिकेर (निकोबार) से वह कटाह द्वीप पहुँच गया, फिर वह कपूर द्वीप पहुँचा और वहाँ से वह सुवर्ण द्वीप गया जहाँ उसका बेटा और बहन दोनों मिल गए। मलाया द्वीप के उत्तरी छोर पर ही केदाह प्रांत स्थित है । एक अन्य कथा में कथासरित्सागर नामक ग्रंथ में लिखा है, गुहसेन नामक समुद्री सार्थवाह अपनी सुन्दर पत्नी देवस्मिता के साथ ताम्रलिप्ति में रहता था। वह मलाया के कटाह द्वीप पहुँच गया। इधर ताम्रलिप्ति में चार ठग उसकी अकेली पत्नी को ठगने आये, किन्तु उसने उन्हें पराजित कर दिया।

अस्मिता ने उनके कपाल पर गरम लोहे से घाव कर निशान बना दिया। जैसे तैसे वे वहाँ से निकल कर केदाह या केदारम् राज्य में आ गये और उसके पति गुहसेन को सबक सिखाने के लिए कटाह द्वीप के राजा से शिकायत की, कि गुहसेन उनका अपराधी दास है, जो आपके राज्य में छिपा हुआ है। राजा ने उन प्रवंचकों की सहायता से गुहसेन को बन्दी बना कर दण्ड देना चाहा। तभी गुहसेन की पत्नी कटाह द्वीप पहुँच कर भारी कठिनाई उठा कर भी उन प्रवंचकों को केदाह के राजा के सामने बेनकाब कर उन्हें दण्ड दिलाती है। यह साहसिक कहानी देवस्मिता जैसी वीरांगना की दास्तान तो है ही, यह सिद्ध करती है कि बंगाल और मलयद्वीप में गहरा व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध था।

विदेशी इतिहासकार मानते हैं कि ताईवान के ऑस्ट्रोनेशियन्स ने सर्वप्रथम जावा और सुमात्रा को आबाद किया।[3] इन लोगों ने न्यूजीलैण्ड और मेडागास्कर को भी आबादी क्षेत्र में बदला। ये लोग महान् समुद्री नाविक थे, जो भारतीयों की तरह विशाल जलपोत बनाकर संचालित किया करते थे। परंतु सबसे पहले इनसे व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाने वाले लोग दक्षिणीभारतीय थे।[4] दक्षिणभारतीयों ने यहाँ के लोगों को लिपि ज्ञान कराया और बाद में जावा और फिलिपिन्स में प्राचीन कवि लिपि का विकास किया । मलयग्रंथ कर्मा रामौनिभ नामक राजा की चर्चा करता है। भुंजगघाटी की खुदाई से प्राप्त अवशेष बता रहे हैं, कि यहाँ पर भारतीय हिन्दुओं और बौद्ध राजाओं की शासनव्यवस्था संचालित थी ।

इस भुंजगघाटी से दश मन्दिरों और स्तूपों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं, जिन्हें चंडी नाम से पुकारा जाता है।

कटाह- केदाह में 30 स्थानों पर खुदाई की गयी, जिसमें 12 शिवमन्दिर और 8 स्तूप प्राप्त हुए हैं । इनमें वाट सुंगेही, बटुपहत और चंडी बुकितबटु के मन्दिर शैव तान्त्रिक सम्प्रदाय के थे। भुंजगघाटी से शिवलिंग, नंदी, महिषासुरमर्दिनी, गणेश और शंकर की पूर्ण प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

¼Hikayat Merong Mahavangsa by Hendrik J M Mair; Sejarah Melayu; Kenneth R Hall; Salasilah Atau Tarikh Kerajaan Kedah; Malay Kingship in Kedah: Religion ,Trade and Society)

सबसे महत्वपूर्ण चण्डी पेंगकला भुजंग मरबौक से प्राप्त हुई है। भुजंगघाटी के सुगाई बाटू से 110 ईस्वी की भारतीय बौद्ध इमारत प्राप्त है, जो दक्षिणी-पूर्वी एशिया की प्राचीनतम धरोहरों में मानी जाती है । यहाँ से प्राप्त हर प्रकार के अवशेष पर भारतीय देवताओं की प्रतिमाए प्राप्त हो रही हैं। नेगर से सिंगापुर तक इन प्राचीन बौद्ध हिन्दु प्रतिमाओं और अन्य अवशेषों को देखा जा सकता है । यहाँ की दंतकथाओं और लोककथाओं में रत्न और सोने से भरपूर प्राचीन राज्यों की कथायें मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि मलयद्वीप (मलेशिया) और भारत का सम्बन्ध 2200 साल पुराना है। चीनी स्त्रोत कहते हैं कि 32 ई. मे यहाँ हिन्दुराज्य था। एक राज्य का नाम लंकाशुक था । राजा भगदत्त ने चीन के दरबार में अपना दूत भेजा था। उस राजदूत का नाम आदित्य था। ईसा की शताब्दी के प्रारंभ में बुद्धगुप्त नामक महानाविक मलयद्वीप में आया । वह रक्तमातृका नगर का श्रेष्ठि था और कई जलपोतों का मालिक था। (रक्तमातृका नगर बंगाल के मुर्शिदाबाद के पास एक गाँव है) वह बंगाल की खाड़ी में उतर कर हंसावती (पेगू-बर्मा) होता हुआ कलशपुर पहुँच गया, जो केदाह साम्राज्य का एक नगर था। आगे उसने केदाह, तकुआ पा और कई महाविहारों में निवास किया और मुक्तकण्ठ से दान किया । उसने केदाह, तकुआ पा और लिगोर का भ्रमण किया और वहॉ पर कई मन्दिरों का दर्शन किया । उसने कई महाविहारों मे निवास किया। केदाह से प्राप्त अभिलेख में उसकी यात्रा और दानशीलता का वर्णन है। केदाह के अभिलेख से निम्न पंक्तियॉ प्राप्त हुई हैं:-

ये धर्मा हेतुप्रभवा तेषां हेतुं तथागतो।
तेषांच यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः।।

अज्ञानाच्चीयते कर्म जन्मनः कर्म कारणम्।
ज्ञानान्न क्रियते कर्म कर्माभावान्न जायते।।

चीन के इतिहासग्रंथ से जानकारी मिलती है, कि मलाया में पहाङ्ग नामक हिन्दू राज्य था। यहाँ के राजा सारिपाल वर्मा ने चीनी सम्राट के दरबार में दो राजदूत भेजे, जिन्हें चीनी सम्राट ने अग्न्याश्वपति (Dragon Horse General) की उपाधि दी थी ।5वीं शताब्दी के मध्य में चीनी एनाल्स के अनुसार कानतोली नामक हिन्दू राज्य था, जिसके राजा श्रीवर नरेन्द्र ने रुद्रभारती नामक राजदूत चीन भेजा था।

किन्त घाटी में इपो के पास पंकलन में गुप्तकालीन बुद्ध की कांस्यप्रतिमा प्राप्त हुई है। तंजोग रामबुतन में टिन की खान से अवलोकितेश्वर बुद्ध की कांस्यमूर्ति प्राप्त हुई है। अष्टभुजी अवलोकितेश्वर की प्रतिमा भी मिली है, जिसके हाथों में त्रिशूल, पुस्तक , कमल , कलश और वरदमुद्रा प्राप्त हुई है। केङ्डु के गुनुंग जेराई शिखर से प्रवाहित नदी के तट पर एक बस्ती का अवशेष प्राप्त हुआ है, जो हिन्दू बस्ती प्रतीत होती है।

जावा सुमात्रा की समृद्धि की कथाएँ भारत के तटवर्ती राज्यों के लोक-संस्मरणों और लोक कथाओं में भरी पड़ी हैं ।[5] तमिल, आंध्र, उड़ीसा और बंगाल की कहानियाँ कहती हैं, कि समुद्र के मध्य स्थित भुजंग और माउंट जेराई के राजा के पास सोने का रथ एवं अपार रत्नभण्डार था। नेगरा के संग्रहालय में पर्यटक 10 फुट ऊँचे राजा बर्सियांग की भव्य राजगद्दी, प्रतिमा और अन्य सामान देख सकते हैं। भुंजगघाटी की खुदाई में 8वीं शताब्दी का हिन्दू मंदिर प्राप्त हुआ है ।

मुहम्मद मुख्तार सैदिन ने द्वितीय शताब्दी का एक पुरातात्विक परिसर खोज निकाला,[6] जो हिन्दू और बौद्ध दोनों हैं और इसका अध्ययन किया जाना बाकी है। इण्डोनेशिया के सुलवेसी से भारत के अमरावती नगर में बनाए गए बुद्ध की कांस्यप्रतिमा प्राप्त हुई है। जकार्ता के पूर्वी भाग से एक संस्कृत का अभिलेख प्राप्त हुआ है। दक्षिणी साम्राज्य से कई भारतीय अभिलेख प्राप्त हुए हैं। बैंगका द्वीप से एक ऐसा अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो मलेशियाई भाषा में है, पर लिपि पल्लव राज्य की है। इंडोनेशियाई लिपि के विकास के इतिहास को देखने से पता चलता है, कि पल्लवकालीन प्रचलित तमिल लिपि का इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।[7]

यहाँ से प्राप्त बर्तन औजार, मंदिर, महल, मूर्ति, अभिलेख, साहित्य एवं अन्य अवशेष प्रमाणित करते हैं, कि यहाँ की संस्कृति और समाज दक्षिणी भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक विकास पर पुन:रूपायित था। 11वीं शताब्दी के चोलों का तंजौर अभिलेख कहता है, कि राजेन्द्र चोल प्रथम ने केदारम् को जीता था। एक लेखक अपने ग्रंथ 'पेरिप्लस ऑफदी एरिथ्रियन सी' में लिखता है कि केदारम्, मलयद्वीप एवं सुमात्रा गंगा नदी पर

अवस्थित शहरों से अच्छी तरह जुड़े हुए थे। राजेन्द्र चोल प्रथम ने केदारम् के राजा श्रीमार विजयोतुंग वर्मन् को बन्दी बनाकर भारत लाया था।[8] (I-tsing, A Record of the Buddhist Religion As Practised in India and Malaya Archipelago (AD 671-695)

मलाया द्वीप चैया के भग्नावशेषों से दो संस्कृत अभिलेख प्राप्त हुए हैं। टोकून नामक स्थान से 11 अभिलेख प्राप्त हुए हैं। लिगोर और केड्डा से प्राप्त संस्कृत अभिलेखों से जानकारी मिलती है, कि श्री महाराज विष्णु शत्रुओं का संहार करने वाले हैं। वे प्रजापालक, न्यायी, दानी और दयालु हैं। ऋजुता, विजय, पराक्रम आदि सारे सद्गुणों से युक्त हैं। राजस्थविर जयंत ने पद्मपाणि, शाक्यमुनि और व्रजपाणि के मन्दिर बनवाए। उनके शिष्य अधिमुक्ति ने दो स्तूप भी बनवाए।

भुंजगघाटी से तकुआ पा नामक स्थान से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो तमिल भाषा में है और तमिल नृपति नन्दिवर्मन् का है, जिस पर उनकी उपाधि अवनिनारायण लिखा हुआ है। यह अभिलेख कहता है कि तमिल देश के पुष्पहार नामक मणिग्रामम् का एक व्यापारी समूह भुजंगघाटी आया हुआ था। तकुआ पा से हिन्दू और बौद्ध देवी-देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हो रही हैं। तकुआ पा दक्षिण भारत के व्यापारियों से भरा रहता था। तकुआ पा के खण्डहर से लगता है, कि मलयद्वीप में यह भारतीय संस्कृति का प्रभावी केन्द्र था। तकुआ पा (तक्कोला) बन्दरगाह पर भारत के नाविकों एवं व्यापारियों का अबाध आवागमन था। कम्बोज , चम्पा , श्याम चीन और जापान जाने वाले अरबी एवं भारतीय जहाज यहाँ से गुजरते थे।

श्रीविजय साम्राज्य के नृपति श्रीमान् विजयोतुंग ने चोल सम्राट् राजराज प्रथम को उपहार भेज कर निवेदन किया था कि वे नागपटटनम् के पास उनके पिता श्री चुल्लमनीवर्मन् की स्मृति में एक महाविहार बनाना चाहते हैं जिसको चोल सम्राट् ने स्वीकार कर लिया था। राजराज चोल ने अनाईमंगलम् नामक ग्राम 1006 ई. में उस महाविहार को समर्पित किया था।[9] अन्य तमिल अभिलेख लिखते हैं, कि केदाह के महाराजा श्रीमार विजयोतुंगवर्मन् ने अपने राजदूत विमलन अगथीस्वरम् के हाथों नागपटट्नम् के पास स्थापित होने वाले शिवमंदिर में कायारोहण के लिए सोने का दीपक, चाँदी का कलश और तश्तरियाँ भिजवाये थे। इस घटना का साक्षी अभिलेख अभी भी नागपट्टनम् में स्थापित है। एक दूसरा लेख कहता है, कि केदाह के राजा ने अपने राज्य अधिकारी कुरूथन केशवन के हाथों से यहाँ अर्द्धनारीश्वर मंदिर बनवाया और कायारोहण उत्सव में चीनी सुवर्ण का कलश भेंट करवाया था। राजराज प्रथम और केदारम् के राजाओं के मध्य मधुर सम्बन्ध थे। केदाह

केदारम् के हर कदम पर हिन्दु और बौद्ध अवशेष बिखरे पड़े हैं । यहाँ से कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इण्डोनेशिया के इस मलय प्रायद्वीप को ही भारतीय व्यापारी और यात्री सुवर्णद्वीप कहते थे।[10]

केदाह के उत्तर में श्याम की खाड़ी में 'पान पान' नामक एक नगर राज्य था, जिसकी समृद्धि के पीछे भारत का एक नाविक राजकुमार था। वह कई व्यापारियों और विद्वान् ब्राहमणों के साथ इस खाड़ी में आया था। उस समय वहाँ दस बौद्ध मठ शिक्षा केन्द्र थे, जिनमें भिक्षु और भिक्षुणी दोनों अध्ययन करते थे। यहाँ से चीन के लिए बहुत आवागमन था। पान पान के राजा ने अपने दूतों के साथ बुद्ध का पवित्र दाँत, रंगीन स्तूप, बोधिवृक्ष के पत्ते, स्वादिष्ठ मीठे पदार्थ और सुगंधित वस्तुएँ चीन के सम्राट् को उपहार स्वरूप भेजी थी।

मलाया द्वीपसमूह में कलशपुर अत्यंत समृद्ध नगर था। नगर के पास सुसज्जित 20 हजार सैनिक योद्धा थे। राज्य के चारों ओर पक्का समुद्र का तट था। स्वर्ण, लोहा, रजत, तथा अन्य धातुओं के साथ रत्नों की बहुलता से यह कलशपुर अत्यंत वैभवशाली नगर था। चारों दिशाओं से रंग-बिरंगे जलपोतों के साथ व्यापारी आते थे और अपने जहाजों को वहीं छोड़ कर मलाया और थाईलैण्ड (श्याम) के भीतरी भागों में स्थित बाजारों में अपना समान बेच कर लौटते थे। हंसावती (पेगू) एवं द्वारावती जैसे समृद्ध व्यापारिक केन्द्र कलशपुर से निरन्तर जुड़े हुए थे। घोर संकटों का सामना करते हुए इन नगरों से व्यापार करने वालों की कथाएँ भारतीय साहित्य में मिलती हैं। भारतीय वैश्यों, श्रेष्ठियों व नाविकों के ग्रामों में कलशपुर एक चर्चित नगर था।

प्राचीन मलाया का आध्यात्मिक एवं भौतिक जीवन भारत की देन है। हिन्दूबौद्ध मलाया में राजनीति, शासन व्यवस्था और सामाजिक जीवन मनुस्मृति पर आधारित था। आज भी मलेशिया के जीवन संस्कृति समाज और शासन पर भारतीय धर्मशास्त्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है। वहाँ का साहित्य भारतीयों द्वारा विकसित किया गया है। लिपि नागरी थी, कला भारतीय थी और उपासना पद्धति भी भारतीय थी। वहाँ रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति और वैदिक साहित्य प्रचलित थे। जावा बूग्गी, ब्रह्मी, मुन्ड, आन्द्र, गुजराती भाषाओं के शब्द मलयु भाषा में है। भारतीय भाषाओं के कई शब्द मलयु भाषा में आज भी प्रचलित हैं। 'हिकायत पिण्डव' में महाभारत 'पुत्तिकोल विष्णु' में विष्णुपुराण 'पिण्डव विजय' में पाण्डव विजय 'हिकायत राजा बंग' में मलाया का 'वंशेतिहास', 'हिकायत मित्रजयपूर्ति' में मलक्का के राजाओं की वीरता और 'उदंग उदंग' में वहाँ के विधि और आचारशास्त्र का वर्णन है। (John Norman,Miksic and Goh Geok Yian,Ancient South East Asia,Social Science Press,2016,p.288)

इस प्रकार हम देखते हैं कि मलाया भूखण्ड के केदाह राज्य और उसके आस पास के नगरों की संस्कृति भारतीय सनातन और बौद्ध धर्म की समन्वित संस्कृति थी। धार्मिक आर्थिक सामाजिक और कलात्मक अभिरुचि में प्राचीन मलायावासी भारतीयों की प्रतिकृति थे। (Ravi kumar, Hindu resurgence in indonesia: inspiring story of millions of muslims converting to hindusim suruchi prakashan keshav kunj(newdelihi) 2014 p .60)

संदर्भ ग्रंथ

1. Shastri K.A. Nilkanth , Cholas, Chenai, University of Madras (5th ed.) 2000, P.86
2. Ibid, P.318
3. Shastri, K.A. Nilkanth, South Indian Influences in the Far East , Hind Kitabs Ltd. Bombay, 1949, Pp. 82-84
4. Shastri K.A. Nilkanth ,Ibid, p.28
5. Ibid , p.48
6. Celina, W.M, Tamil Influences in Malaysia, Indonesia and the Philippines, Manila Press, 2000 p. 41
7. Shastri, K.A. Nilkanth
8. Subrahmaniyan , T.S. Ramains of Relationship
9. Wheatly P. " The Golden Chersonese "(21) JSTOR 1955 PP 61-78
10. Kumar, Ravi , Hindu Resurgence in Indonesia: Inspiring Story of millions of Muslims , Suruchi Prakashan, Jhandwalan, New Delhi , 2014, Pp. 60

शीत ऋतु में स्वास्थ्यसंरक्षण

डॉ. विश्वावसु गौड़
बी ए एम एस (आयुर्वेदाचार्य), एम.डी. (आयुर्वेद)
असिस्टेंट प्रोफेसर, एम.जे.एफ. आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चौमू, जयपुर, राजस्थान

प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़
पूर्व कुलपति,
डॉ. एस. राधाकृष्णन् राजस्थान
आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

स्वास्थ्य के संरक्षण एवं रोग के निवारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले वाला आयुर्वेद शाश्वत एवं अनादि है । अति प्राचीन काल से ही सिद्धान्तों के अनुरूप व्यावहारिक प्रयोगों का निर्देश देने वाला आयुर्वेद परम्परागत रूप से व्यवस्थित रूप में हमें प्राप्त होता आ रहा है । आदिकाल से ही इसका स्थायित्व इस के सिद्धान्तों के कारण है । त्रिदोष, सप्त धातु, पञ्चमहाभूत, त्रयोदश अग्नियाँ आदि से सम्बन्धित अनेक मूलभूत सिद्धान्त न केवल प्राचीन आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान आदि प्रमाणों से ही यथार्थ रूप में सिद्ध हैं, बल्कि युगानुरूप सन्दर्भ में भी विकसित अनेक वैज्ञानिक उपकरणों और प्रयोगशालाओं के माध्यम से भी इनकी प्रामाणिकता संसिद्ध हो रही है।

आयुर्वेद के प्राथमिक उद्देश्य में स्वास्थ्यसंरक्षण प्रथमतः निर्दिष्ट है, इस क्रम में दोषों का सम स्थिति में रहना आवश्यक है । सम प्रमाण में रहते हुए दोष सम्पूर्ण शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं को यथावत् बनाए रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं । इन्हें प्राकृत स्वरूप में बनाए रखने के लिए आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इन तीन उपस्तम्भों का व्यवस्थित परिपालन आवश्यक है । आहार के साथ ही विहार की परिगणना भी कर ली जानी चाहिए, इन सबका दोषों पर सीधा प्रभाव होता है । यद्यपि दोषों को प्राकृत और वैकृत स्वरूप प्रदान करने में अनेक कारण हैं जिनका आचार्यों ने यथोचित स्थान पर व्यवस्थित रूप से विवेचन किया है ।

दोषों को प्राकृत रखने के कारणों में से एक कारण है - दिनचर्या एवं ऋतुचर्या का परिपालन ।

दिनचर्या का व्यवस्थित रूप से पालन करने वाला व्यक्ति जब तक कोई आगन्तुक कारण का व्याघात नहीं हो जाए तब तक सामान्यतया स्वस्थ रहता है और ऐसे स्वस्थ व्यक्तियों में प्रबल आगन्तुक कारणों से आक्रान्त होने पर भी उत्पन्न होने वाले विकार शरीर को विशेष रूप से पीड़ित नहीं कर पाते हैं, क्योंकि शरीर में रोगप्रतिरोधक क्षमता के रूप में जो विकारक विघात के भाव उपस्थित रहते हैं, वे इन कारणों को निराकृत कर देते हैं । व्यक्ति की दिनचर्या

विभिन्न कारणों से सर्वदा एक समान नहीं रह पाती, इसमें समय-समय पर परिवर्तन करना पड़ता है। इन कारणों में प्रमुख कारण काल का परिवर्तन है, जो कि ऋतु के रूप में जाना जाता है । काल का विशिष्ट आकलन करते हुए आयुर्वेद के आचार्यों ने स्वस्थ व्यक्ति के लिए विशिष्ट चर्या का परिपालन करने के लिए कुछ मापदण्ड सुनिश्चित किए हैं, अतः इन मापदण्डों के अनुसार परिपालनीय विशिष्ट प्रक्रिया को ऋतुचर्या कहा जाता है । स्वास्थ्य के संरक्षण में ऋतुचर्या का परिपालन अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है ।

ऋतु के स्वरूप को आचार्य ने वैज्ञानिक दृष्टि से सुनिश्चित किया है, उस के विशेष विवरण की यहाँ अपेक्षा नहीं है, यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि काल के परिमाण के परिगणन में 12 माह का एक संवत्सर परिभाषित किया गया है। यह एक संवत्सर ऋतु के विभाग से षडङ्ग वाला है । छः ऋतुओं के रूप में इसके 6 अङ्ग हैं, इनमें प्रारंभिक तीन ऋतुएँ हैं- शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म। इन्हें आदान एवं उत्तरायण काल भी कहा जाता है । वर्षा, शरद् तथा हेमन्त ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायन स्वरूप की है, इन्हें विसर्ग काल भी कहा जाता है ।

प्रत्येक ऋतु में सोम, सूर्य और अनिल इन तीनों का पृथक-पृथक स्वरूप रहता है, जिसके आधार पर ये ऋतुएँ स्थावर एवं जङ्गम सृष्टि को प्रभावित करती हैं । आयुर्वेद के आचार्यों ने इन छः ऋतुओं को दो-दो माह में व्यवस्थापित किया है, यद्यपि यह गणना दो प्रकार से की गयी है- रसबलोत्पत्ति के अनुसार (जिसमें स्वास्थ्य के संरक्षण का क्रम किया जाता है) तथा संशोधन के अनुसार (जिसमें वमन-विरेचन आदि के द्वारा शरीर का संशोधन विधेय है) । यह द्वितीय प्रकार भी स्वास्थ्यसंरक्षण और रोगनिवारण में परमोपयोगी है ।

स्वास्थ्यसंरक्षण की दृष्टि से देखें तो मार्गशीर्ष एवं पौष हेमन्त ऋतु है, जिसे वर्तमानकालीन ईसवीय गणना के अनुसार 25 अक्टूबर से 24 दिसंम्बर तक माना जा सकता है । माघ एवं फाल्गुन यह शिशिर ऋतु है, जो प्रायः 25 दिसम्बर से 24 फरवरी तक मानी जाती है । चैत्र एवं वैशाख वसन्त है , 25 फरवरी से 24 अप्रैल तक के समय में नियत किया जाता है । ज्येष्ठ एवं आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु है, जो प्रायः 25 अप्रैल से 24 जून तक के काल में निर्धारित है । श्रावण एवं भाद्रपद वर्षा का काल है जो प्रायः 25 जून से 24 अगस्त तक परिगणनीय है । आश्विन एवं कार्तिक यह दो माह शरद् ऋतु के माने गए हैं, जो सामान्यतया 25 अगस्त से 24 अक्टूबर तक के समय के रूप में निर्धारित हैं।

यह ऋतुओं का सामान्य सङ्केत है, शास्त्रों के अनुसार यह विस्तृत रूप से वर्णन के योग्य है, जिनमें इनके स्वरूप का निर्धारण एवं वैशिष्ट्य बताया गया है । इन ऋतुओं की गणना भारतीय ज्योतिषशास्त्र के द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुरूप की गयी है, अतः कभी-कभी इनकी कालगणना में 10 से 20 दिन का अन्तर आ जाने से ऋतु का प्रभाव भी तदनुरूप ही होता है ।

यहाँ इस लेख का प्रमुख उद्देश्य शीत ऋतु में स्वास्थ्यसंरक्षण इस विषय को केन्द्रित कर वर्णन करना है । अतः यहाँ यह अवधेय है कि हेमन्त एवं शिशिर ऋतु ये दोनों शीत ऋतु हैं । इन दोनों में लगभग एक समान ऋतुचर्या परिपालनीय है, केवल शिशिर में थोड़ा सा अन्तर करके विशेष चर्या का परिपालन निर्दिष्ट है । ऋतुचर्या के परिपालनीय स्वरूप को दो प्रकार से विभक्त किया जा सकता है- 1. सामान्य क्रम 2. विशिष्ट क्रम ।

1. सामान्य क्रम-
2. दिनचर्या-परिपालन-

शीतकाल में रात्रियाँ लम्बी होती हैं और दिन छोटे होते हैं, अतः इनका सम्यक् विभाजन कर यथोचित चर्या का परिपालन करना चाहिए । रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्तिम काल में शयन करने वाले व्यक्ति को प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर शौच आदि से निवृत्त होकर वातघ्न तैलों से सम्पूर्ण शरीर पर अभ्यङ्ग करना चाहिए विशेष रूप से सिर पर तैल का विमर्दन करे और उसके बाद सामान्य व्यायाम करे तथा किंचित् विश्राम करने के बाद उष्ण जल से स्नान करे अथवा इस क्रम को दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है- ब्राह्म मुहूर्त में उठने के बाद शौच आदि से निवृत्त होकर शरीर बल एवं आयु के अनुरूप योग, प्राणायाम, चङ्क्रमण (घूमना) आदि यथोचित रूप से जिसको जितना अभ्यास हो उसके अनुसार किया जाना चाहिए । यह परमावश्यक है । प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनि इसका निर्देश करते आ रहे हैं, जिसे वर्तमान में भी अनेक प्रकार के अनुसन्धानों के माध्यम से प्रमाणित किया जाकर भिन्न-भिन्न प्रकार से इसके परिपालन के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

1. नस्य

प्रातःकाल अभ्यङ्ग के क्रम में अभ्यङ्ग के साथ या अभ्यङ्ग के पहले ही सामान्य नस्य किया जाना चाहिए । षड्बिन्दु तैल या अणु तैल नाक में दोनों ओर तीन-तीन बूँद डालें अथवा सरसों के तेल में अंगुली को डुबो कर उसे नाक में दोनों ओर लगावें । यह प्रतिदिन करने योग्य कार्य है, इससे प्रतिश्याय (जुकाम) का बचाव होता है साथ ही श्वास के माध्यम से होने वाले विभिन्न प्रकार के सङ्क्रमणों को रोकने में भी यह प्रभावी है । यह नस्य का केवल सामान्य व्यावहारिक स्वरूप है, विधिपूर्वक किया जाने वाला नस्यकर्म पञ्चकर्म का एक अङ्ग है, वह चिकित्सक के द्वारा ही सम्पादन करने योग्य है तथा पृथक् से विवेचन के योग्य है ।

2. अभ्यङ्गादिक्रम

इसके बाद अभ्यङ्ग, व्यायाम, उद्वर्तन एवं स्नान क्रमपूर्वक करने चाहिए । वर्तमान काल में उद्वर्तन (उबटन) का

स्थान साबुन ने ले लिया है, पर जितना श्रेष्ठ प्रभाव त्वचा पर उद्वर्तन का होता है, उतना प्रभाव साबुन का नहीं होता। इसलिए अध्ययन के बाद आवश्यक रूप से उद्वर्तन (उबटन) करना ही चाहिए। यह प्रतिदिन करणीय है, फिर भी यदि प्रतिदिन करना सम्भव न हो, तो सप्ताह में 3 दिन अवश्य करना ही चाहिए। किसी भी वातदोषनाशक आयुर्वेदीय सिद्ध तैलों से सम्पूर्ण शरीर पर अपने हाथ से ही अभ्यङ्ग करने पर सामान्य व्यायाम भी हो जाता है।

उद्वर्तन (उबटन) करने के बाद उष्णोदक से स्नान कर लेना चाहिए। स्नान के बाद ध्यान परमावश्यक है। वर्तमान काल में इस क्रम के प्रति उपेक्षाभाव बढ़ा है। अभ्यङ्ग, उद्वर्तन (उबटन) एवं व्यायाम से शरीर की त्वचा में जितनी कान्ति आती है, वह स्वाभाविक होती है तथा आभ्यन्तर स्वास्थ्य एवं बाह्य स्वास्थ्य को प्रदर्शित करने वाली होती है। ऐसी कान्ति कृत्रिम क्रीम- पाउडर इत्यादि के प्रयोग से सम्भव नहीं है।

3. समुचित आहार-प्रयोग

शीत ऋतु में हेमन्त ऋतु एवं शिशिर ऋतु दोनों की गणना हो जाती है। इस काल में सोम (चन्द्रमा) बलवान् होता है तथा सूर्य का तेज कम होने से तथा बादल यदा-कदा होने और शीत वायु के चलने से भूमि का ताप शान्त हो जाता है, अतः ये ऋतुएँ सौम्य स्वभाव की होती हैं। शीत ऋतुओं में प्राणियों की जठराग्नि प्रबल होती है, अतः उसे आहार के रूप में पौष्टिक तथा पर्याप्त मात्रायुक्त भोजन के रूप में मिलने वाला इन्धन उचित मात्रा में मिलना आवश्यक है। यदि शीतकाल में प्रवृद्ध जठराग्नि को समुचित भोजन प्राप्त नहीं होता है, तो वह शरीरस्थ धातुओं का पाचन करती है, अतः ऐसी स्थिति में धातुओं के क्षय के कारण शीतकाल में शरीरस्थ वायुदोष प्रबल होकर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करने में समर्थ होता है। इसलिए शीतकाल में मधुर अम्ल-लवणरसप्रधान गुरु एवं स्निग्ध भोजन यथाकाल यथोचित मात्रा में करना आवश्यक है। यह एक सामान्य निर्देश है, जिसका पालन सभी के लिए करणीय है।

4. स्वास्थ्य का अनुवर्तन

यह उपर्युक्त सामान्य आयुर्वेदीय पारम्परिक क्रम है, जिसका सदियों से लोग न्यूनाधिक रूप में परिपालन करते आ रहे हैं। वर्तमान काल में इन पारम्परिक क्रियाओं का, प्रक्रियाओं का, उपक्रमों का ह्रास हुआ है, लेकिन जब भी आधुनिक अनुसन्धान के माध्यम से प्राचीन प्रक्रियाओं को नवीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जाता है, तो कुछ लोग इनकी ओर आकर्षित अवश्य होते हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्त शाश्वत हैं, इनका नियमित रूप से निरन्तर परिपालन करने वाले व्यक्ति सदा स्वस्थ रहते हैं। भारतीय परिवेश में आयुर्वेदीय क्रम अत्यधिक अनुकूल है। आचार्य कहते हैं कि सर्वदा उसका पालन करना चाहिए, जिससे निरन्तर स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता रहे, यथा-

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्।। (च.सू. 5/13)

शरीर में निरन्तर शीर्यमाण, शरीर में कुछ न कुछ शीर्णन होता रहता है, अतः उसी के अनुरूप यदि पूर्ति करनी है तो आयुर्वेद के द्वारा निर्दिष्ट आहार-विहार के क्रम का परिपालन करना चाहिए। यथासमय नियमित रूप से अनुकूल, हितकारी, पथ्य, पौष्टिक, दीपन-पाचन स्वरूप आहार को करने वाला तथा सम्यक् अभ्यङ्गादिक्रम को करने वाला व्यक्ति स्वास्थ्यानुवर्तन में सफल होता है-

2. विशिष्ट क्रम

रसायनयोग

शीत ऋतु में विभिन्न प्रकार के पारम्परिक पौष्टिक रसायनयोगों का प्रयोग करना हितकर होता है । इसमें गोंद के लड्डू, खरेंटी के लड्डू, ग्वारपाठे के लड्डू, हरिद्रा के लड्डू, मेथी के लड्डू, अजवायन के लड्डू, सोंठ के लड्डू आदि विभिन्न प्रकार के रसायन पारम्परिक रूप से प्रचलित हैं, जिनको परिवार के बड़े-बूढ़े लोग अच्छी प्रकार से जानते हैं । अग्निबल को ध्यान में रखते हुए इनका व्यवस्थित प्रयोग करना चाहिए। यह पृथक् से विवेचनीय विषय है।

अन्य औषधीय प्रयोग

चिकित्सक के परामर्श से अनेक प्रकार के पाक अश्वगन्धापाक, शतावरीपाक, सर्पिर्गुड, कौंचपाक, सौभाग्यशुण्ठीपाक आदि अनेक प्रकार के पाक आयुर्वेदीय रस-भैषज्यकल्पना में प्रचलित हैं तथा विभिन्न शास्त्रों में विस्तार से इनका वर्णन किया गया है। च्यवनप्राश, ब्रह्मरसायन, द्राक्षावलेह आदि भी प्रसिद्ध रसायनयोग हैं, जो लोक में पर्याप्त प्रचलित हैं ।

भस्मयुक्त योग-प्रयोग

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के स्वर्णभस्मयुक्त योग, विभिन्न प्रकार की उपयोगी लौह इत्यादि भस्मों के संयोग से निर्मित प्रभावी योग तथा शिलाजीत आदि का प्रयोग स्वास्थ्य के संरक्षण में अत्यधिक उपयोगी है, पर इन्हें चिकित्सक के परामर्श के बिना प्रयुक्त नहीं करना चाहिए ।

सामान्य औषधीय द्रव्य-प्रयोग

भारतवर्ष में परम्परागत रूप से ऋतुओं को ध्यान में रख कर अनेक प्रकार के औषधीय-प्रयोग लोकव्यवहार में

प्रचलित हैं, जो देश काल एवं परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए शरीर के संरक्षण एवं अभिवर्धन के लिए परमोपयोगी सिद्ध हुए हैं। उत्तरी भारत में सामान्यतया शीत का प्रकोप अन्य भागों की अपेक्षा अधिक होता है, अतः शीत ऋतु में अनेक प्रकार के सामान्य निरापद औषधीय-प्रयोग लोक में प्रचलित हैं। यहाँ शीत ऋतु में प्रयुक्त होने वाले उपयोगी निरापद स्वरूप के कुछ योगों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनका उपयोग कर सामान्यतया स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का संरक्षण कर सकता है, यथा-

1. दो छोटी पीपल दूध में डालकर अच्छी तरह उबाल कर दूध में आवश्यकतानुसार मिश्री मिलाकर या बिना मिश्री मिलाए ही उबली हुई पीपल को चबाकर खा, कर यही दूध पी लेना चाहिए। दूध की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में पृथक् पृथक् होती है, जो व्यक्ति जितना दूध अभ्यासपूर्वक पीता है, उतना ही दूध ले। यह प्रयोग सर्दियों में 10 से 20 दिन तक किया जाना चाहिए। 10 दिन का विराम देकर पुनः 10 दिन या 20 दिन किया जा सकता है। जिन लोगों को प्रतिश्याय (जुकाम), स्वरभेद, गले में खरखराहट, अधिक कफ आना आदि विकृतियाँ होती हैं तथा श्वास, कास, अग्निमान्द्य आदि से ग्रस्त होते हैं, ऐसे व्यक्तियों को यह अधिक लाभदायक है।

2. दो छुहारे दूध में डाल कर विधिपूर्वक दूध को उबालना चाहिए। उबलने के बाद छुहारों की गुठली निकाल कर छुहारे खा कर ऊपर से यह दूध पीना चाहिए। यह श्वास, कासादि विकृतियों को दूर करता है। कफदोष से सम्बन्धी विकृतियों का निवारण करता है एवं शरीर को पुष्टि प्रदान करने के साथ-साथ रोगप्रतिरोधकक्षमता भी उत्पन्न करता है।

3. अच्छी पिण्डखजूर को लेकर उसकी गुठली निकाल देनी चाहिए उसके बाद पिण्डखजूर में 1 ग्राम हल्दी डालकर गोली बनाकर उसे मुँह में रखकर चूसना चाहिए, ऐसा दिन में तीन या चार बार किया जा सकता है। जिनमें कफजन्य विकृतियाँ ज्यादा होती हैं उनके लिए यह अत्यन्त लाभदायक है, सूखी खाँसी में भी यह परमोपयोगी है।

4. अदरक के टुकड़े 5 ग्राम, कच्ची हल्दी के टुकड़े 10 ग्राम एवं एक ताजा आँवले के कटे हुए टुकड़े दिन में एक बार भोजन के साथ सर्दियों में लेना हितकर होता है। जिन लोगों को खट्टी डकार और जलन होती हो, उन्हें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

5. एक चम्मच हरिद्राखण्ड को दूध में डाल कर दिन में दो बार लिया जा सकता है। जिनको बार बार जुकाम होता है या श्वास- खाँसी रहती है, उनके लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। यदि इसे दूध में मिला कर बच्चों को मात्रा के अनुसार दिया जाए तो यह अत्यन्त स्वादिष्ट लगता है और लाभदायक भी है। यह लम्बे समय तक लेने पर भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता, फिर भी इसमें वैद्य का परामर्श लिया जाना आवश्यक है, क्योंकि यह औषधीय योग है।

संकल्प की पूर्णता

सीताराम गुप्ता
ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा
दिल्ली-110034

मैं प्रायः कोई बहुत लंबी कहानियाँ नहीं लिख पाता हूँ। मैं किंचित् यथार्थवादी रहा हूँ, अतः किसी घटना को निरर्थक विस्तार नहीं दे सकता। जो अनुभव में न आया हो, थोड़ा-बहुत पकड़ में न आया हो उस विषय में भी लिखना संभव नहीं हो पाता। यदि हम फिल्मी कहानियों पर ग़ौर करें तो पाएँगे, कि कमोबेश हर फिल्म में नायक-नायिका के अतिरिक्त एक खलनायक और एक खलनायिका भी कहानी में अवश्य उपस्थित होते हैं और इन्हीं के प्रताप से कहानी आगे बढ़ती है। खलनायक और खलनायिका बाधा उत्पन्न करते रहते हैं और कहानी आगे बढ़ती रहती है। जीवन के हर क्षेत्र में यही क्रम लागू होता है। हमारा जीवन भी ऐसे ही गति पाता है।

एक सुखांत फिल्म अथवा कहानी में जहाँ खलनायक अथवा खलनायिका का काम ख़त्म हुआ नायक व नायिका का मिलन हो जाता है। कहानी पूरी हो जाती है। फिल्मी कहानी में नायक व नायिका के मिलन की तरह ही हमारे संकल्पों की पूर्ति में भी एक ऐसा ही खलनायक बाधक होता है और वह है द्वंद्व। हमारे संकल्पों के पूरा न होने का एक कारण तो यही है, कि हम अपने संकल्प की पूर्णता के प्रति आश्वस्त ही नहीं होते अपितु हम एक द्वंद्व की स्थिति में रहते हैं कि हमारा संकल्प पूरा भी होगा या नहीं अर्थात् हमें विश्वास ही नहीं होता, कि हमारा संकल्प पूरा हो जाएगा। कई लोग संकल्प लेने के साथ-साथ प्रायः यह भी कहने लगते हैं, कि मेरे संकल्प कभी पूरे नहीं होते और इस प्रकार हम एक विरोधी संकल्प ले लेते हैं, कि ''मेरे संकल्प कभी पूरे नहीं होते।''

इस प्रकार की सोच कि ''मेरे संकल्प कभी पूरे नहीं होते'' भी एक संकल्प ही है, लेकिन नकारात्मक और अनुपयोगी संकल्प, जो हमारे संकल्पों की पूर्णता में सबसे बड़ी बाधा बनता है। यदि हम चाहते हैं, कि हमारे संकल्प पूरे हों, तो सबसे पहले हमें यही संकल्प लेना चाहिए कि मेरे सभी सकारात्मक संकल्प या विचार सदैव पूर्ण होते हैं। यहाँ एक बात और भी महत्वपूर्ण है और वह यह कि हम जाने-अनजाने हर क्षण नए-नए संकल्प लेते ही रहते हैं।

हमारे मन में उठने वाला हर विचार एक संकल्प ही होता है। यदि हम अपने अंदर यह विश्वास पैदा कर लें कि हमारे सभी सकारात्मक विचार या संकल्प पूर्णता को प्राप्त होते हैं, तो जीवन में एक क्रांति आ जाए। हमारे असंख्य उपयोगी विचार पूर्ण होकर हमारे जीवन और पूरे समाज को बदल डालें। अतः सबसे पहले अपने संकल्प की पूर्णता के प्रति अपने मन में पूर्ण विश्वास पैदा करना अनिवार्य है।

अब हमें अपने संकल्पों के पूर्ण होने के विषय में कोई संदेह नहीं रहा और हम पूरे जोशो-ख़रोश के साथ कुछ महत्वपूर्ण संकल्प ले लेते हैं, लेकिन फिर भी कई बार निराशा ही हाथ लगती है। आखिर क्यों? हम सबमें अच्छे संकल्प लेने की क्षमता है और हम उपयोगी संकल्प ले भी लेते हैं अथवा उपयोगी विचारों का चुनाव कर भी लेते हैं, लेकिन क्या हम किसी संकल्प को लेने के बाद अथवा किसी उपयोगी विचार का चुनाव करने के बाद उसकी उपयोगिता के तत्त्वों को अक्षुण्ण रख पाते हैं? शायद नहीं। विचार ही तो है, कमज़ोर पड़ जाता है। या तो संकल्प की उपयोगिता पर ही संदेह होने लगता है अथवा संकल्प के विरोधी विचार ही सिर उठाने लगते हैं और द्वन्द्व शुरू हो जाता है।

द्वन्द्व की स्थिति में हमारे संकल्प की भावना पर बार-बार प्रहार होता है और मूल संकल्प कब और किस रूप में प्रभावी होकर वास्तविकता ग्रहण करता है, हमें पता ही नहीं चलता। जीवन में द्वन्द्व या शंका के कारण परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते रहते हैं। विचार वास्तविकता का मूल है। पहले एक विचार ने स्वरूप ग्रहण करना प्रारंभ किया ही था, कि दूसरे विचार ने दूसरा स्वरूप ग्रहण करना प्रारंभ कर पहले विचार को विकृत अथवा नेस्तनाबूद कर दिया। अब दूसरे विचार को तीसरे ने और तीसरे विचार को चौथे ने धराशायी कर दिया। हर विचार, हर इच्छा अथवा हर संकल्प के साथ यही क्रम जीवन भर चलता रहता है।

हम जीवन भर अच्छा सोचते हैं, बार-बार शुभ संकल्प लेते हैं, लेकिन द्वंद्व के कारण हमारी अच्छी भावना या विचार टिक ही नहीं पाते अर्थात् संकल्प वास्तविकता को प्राप्त नहीं हो पाते। इस प्रकार जीवन में विभिन्न इच्छाओं, संकल्पों अथवा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए द्वन्द्व की समाप्ति अनिवार्य है। द्वन्द्व की समाप्ति ही मनोवांछित उपयोगी जीवन जीने की अनिवार्य शर्त है तथा जीवन जीने की कला भी है। यहाँ अपनी सोच में थोड़ा दिशांतरण अथवा डाइवर्सिफिकेशन करना होगा अर्थात् एक और सोच विकसित करनी होगी और वह यह कि कोई भी नकारात्मक या विरोधी सोच मेरी सकारात्मक विचार-प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करती।

इसे इस प्रकार भी स्वीकार किया जा सकता है, कि केवल सकारात्मक सोच ही मेरे जीवन को प्रभावित करती है। अर्थात् द्वन्द्व से उत्पन्न नकारात्मक या विरोधी सोच के विरुद्ध उसकी विरोधी एक अन्य सोच का विकास। यह एक एंटी वायरस डिवाइस की तरह काम करेगा। यह हमारे संकल्प अथवा उपयोगी मूल विचार को सुरक्षित रखने और उसे वास्तविकता में बदलने में सहायक एक विशुद्ध सकारात्मक विचार है। जीवन में इच्छाओं का दमन करने की आवश्यकता नहीं है। इच्छाओं के अभाव में इस भौतिक शरीर का प्रयोजन ही क्या हो सकता है? जीवनोपयोगी, समाजोपयोगी इच्छाओं को उत्पन्न होने दीजिए और उन्हें वास्तविकता में परिवर्तित कीजिए, लेकिन इसके लिए इच्छा के विरोधी भावों का त्याग भी अनिवार्य है। अब इच्छा के विरोधी भावों को मन में आने से कैसे रोका जाए?

हम डॉक्टर अथवा न्यूट्रिशनिस्ट से परामर्श करके उचित आहार-विहार का चार्ट बना कर उसका पालन करते हैं। ब्यूटी-पार्लर में जाकर चेहरे तथा दूसरे अंगों की लिपाई-पुताई करा लेते हैं और स्थायी परिवर्तन के लिए उपलब्ध है, कॉस्मेटिक सर्जरी। कपड़ों के चुनाव और डिज़ाइनिंग के लिए फैशन डिज़ाइनर की सेवाएँ उपलब्ध हैं। शारीरिक सौष्ठव के लिए जिम हाज़िर है। हर क्षेत्र में प्रशिक्षण की व्यवस्था सुलभ है, तो क्या विरोधी भावों के त्याग के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी संभव है? अवश्य संभव है। जीवन में यही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसके प्रशिक्षण की परमावश्यकता है, लेकिन हम इसी क्षेत्र की अधिकाधिक उपेक्षा करते हैं, क्योंकि इस प्रशिक्षण में बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती, अतः यह प्रशिक्षण न तो सम्भव हो पाता है, न ही कहीं दिखायी देता।

विचारों का उद्गमकर्त्ता मन है, अतः मन के उचित प्रशिक्षण द्वारा न केवल उपयोगी विचारों का बीजारोपण संभव है, अपितु साथ ही विचारों के विरोधी भावों के बीजारोपण को रोकना भी संभव है। इसके लिए मन की साधना अनिवार्य है। मन की साधना अर्थात् मन को विकारों से मुक्त कर उसमें उपयोगी विचार या सुविचार डाल कर उस छवि को निरंतर दृढ़तर करते जाना। यही ध्यान अथवा मेडिटेशन है। पूरी ऊर्जा को एक ही केन्द्रबिन्दु पर एकत्र करना। ध्यान द्वारा अपेक्षित उपयोगी विचार, इच्छा अथवा संकल्प को कल्पनाचित्र या चाक्षुषीकरण (विज़ुअलाइज़ेशन) द्वारा लगातार दृढ़तर कर वास्तविकता में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में विरोधी भाव उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि ध्यान अनुपयोगी अथवा ग़लत विचार पर चला जाता है, तो उसे वहाँ से हटा कर पुनः उपयोगी विचार अथवा संकल्प पर लाने का प्रयास अनिवार्य है। निरंतर अभ्यास द्वारा यह पूर्णतः संभव है। ध्यान अथवा मेडिटेशन की सैकड़ों विधियाँ मौजूद हैं। किसी भी विधि से अभ्यास करें लाभ होगा ही।

गाँधीजी की प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति आस्था

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष – राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्
साहित्य सरोवर संस्था

आयुर्वेद एक प्राचीन चिकित्सा-पद्धति ही नहीं अपितु जीवनविज्ञान भी है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। चिकित्सा की दृष्टि से जो अठारह प्रकार के उपशय वर्णित हैं, उनमें प्रचलित सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ समाविष्ट हो जाती हैं। ये चिकित्सा-पद्धतियाँ किसी एक विषय को ग्रहण कर अपनी प्रक्रिया सम्पादित करती हैं, जबकि आयुर्वेद आवश्यकतानुसार सभी को उपयोग में ला कर शरीर को दोषरहित बनाने में सफल सिद्ध होता है। आज की प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद से पृथक् नहीं है। इसके सिद्धान्त और आयुर्वेद के सिद्धान्तों में प्रायः साम्यता है। आयुर्वेद में जिसे स्वभावोपरम या हेतुव्याधि विपरीत अन्न एवं विहार कहा गया है, यह प्राकृतिक चिकित्सा ही है। आचार्य वाग्भट कहते हैं-

हिताहारविहारणां सदाचारनिषेविणाम् ।
लोकद्वव्यपेक्षाणां जीवितं ह्यमृतायते ।।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का कार्य है, एक ओर विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालना और उसे अपनी पूर्वावस्था पर पहुँचाना तथा दूसरी ओर उपयुक्त प्राकृतिक भोजन द्वारा शरीर में उन पोषक तत्त्वों को पहुँचाना, जिनकी उसे वास्तव में आवश्यकता हो। इस चिकित्सा प्रणाली के प्रकार सर्वथा सादे, सरल और स्वाभाविक होते हैं। मादकता एवं माँसाहार का इसमें सर्वथा निषेध है। इस प्रणाली का मानना है, कि मनुष्य दवाओं से कभी निरोग नहीं हो सकता, अपितु प्रकृति की सहायता से ही अपनी जीवनी शक्ति को बढ़ा कर रोगमुक्त हो सकता है। रोग शरीर के विषों का, जिन्हें कि विजातीय द्रव्य कहा जाता है, निष्कासन मात्र है।

इस कार्य में हम प्रकृति की जितनी अधिक सहायता करेंगे, उतना ही हमारा शरीर अधिक स्वस्थ होगा। वही द्रव्य या उपाय आरोग्यप्रद हो सकता है, जिसका हमारी जीवनी शक्ति से सीधा सम्बन्ध है। ये द्रव्य एवं उपाय हैं - मिट्टी, पानी, हवा, प्रकाश, विश्राम, व्यायाम, उपयुक्त आहार, उपवास तथा उच्च उदात्त मानसिक भावनाएँ आदि। इनके अतिरिक्त दवाओं को यहाँ विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक (जॉन मेसन

गुड) का कथन है - 'लड़ाई, महामारी और दुष्काल इन तीनों की अपेक्षा दवाओं से मरने वालों की संख्या अधिक है'।

महात्मा गाँधी इसी प्राकृतिक चिकित्सा के पक्षपाती थे। वे रामनाम को सबसे बड़ा अवलम्बन मानते थे जो आयुर्वेदोक्त देवव्यापाश्रय औषध है। वे पथ्यसेवन, अपथ्यत्याग और उच्च मनोभावों को अधिक महत्व देते थे। यह आयुर्वेदोक्त सत्वावजय है। पानी, मिट्टी, उपवास आदि से उपचार को वे अधिक महत्त्व देते थे - यह आयुर्वेक्तयुक्तिव्यपाश्रय औषध है। वे माँसाहार के प्रबल विरोधी थे, क्योंकि इसमें हिंसा का प्रयोग होता है। वे तो अहिंसा के पुजारी थे। आयुर्वेद भी अहिंसा को श्रेष्ठ प्राणवर्धक कहता है - अहिंसा प्राणवर्धनानां श्रेष्ठतमा (चरक)। आयुर्वेद में तो फिर भी क्वचित् चिकित्साप्रकरणों में रोगी के प्राण बचाने हेतु माँस के प्रयोगों का उल्लेख मिलता है, किन्तु उन्होंने माँसाहार को चिकित्सा में कहीं महत्त्व नहीं दिया। उनके जीवन के दो प्रसंग यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनमें उन्होंने माँसाहार को नकारते हुए केवल प्राकृतिक चिकित्सा के आधार पर ही अपने पुत्र तथा पत्नी के प्राण बचाये थे -

1. गाँधीजी के पुत्र मणिलाल सन्निपात ज्वर से ग्रस्त हो गये। ज्वर कम हो ही नहीं रहा था। उन्होंने उपचार हेतु एक चिकित्सक को घर बुलवाया। चिकित्सक ने भली भाँति उसके शरीर का परीक्षण कर कहा - 'गाँधी जी ! आपके बच्चे के इलाज में अब औषधियाँ काम नहीं कर सकती, अब तो इसे अण्डे और मुर्गी का शोरबा देना ही अच्छा है।

गाँधी जी चिकित्सक की बात सुन कर चौंके, उन्होंने बड़ी आश्चर्य की मुद्रा में कहा - 'डाक्टर साहब ! मेरा परिवार तो शाकाहारी है। मैं इन दोनों वस्तुओं को नहीं दे सकता। यदि सम्भव हो तो कोई दूसरी ही वस्तु बताइये'।

डॉक्टर ने उत्तर दिया - 'आप नहीं जानते, कि रोगी की स्थिति कितनी खराब है। बचना मुश्किल है। रोगी मृत्यु से जूझ रहा है। हाँ, दूध और पानी मिला कर दिया जा सकता है पर इससे पोषण पूरा नहीं होगा'।

गाँधीजी ने कहा - 'डॉक्टर साहब ! इन वस्तुओं का उपयोग मेरी दृष्टि में हिंसा होगा। उचित हो या अनुचित, पर मैं तो इसे धार्मिक दृष्टि से देखता हूँ। मैं आपका यह इलाज तो करा नहीं सकता। मुझे नाड़ी और हृदय गति देखना नहीं आता, अतः आप समय समय पर आ कर इसकी जाँच कर मुझे अवगत कराते रहें - आपकी बड़ी कृपा होगी'।

डॉक्टर जाँच करने का आश्वासन दे कर चले गये। अब गाँधी जी ने मणिलाल की जलचिकित्सा प्रारम्भ की। उन्होंने एक चादर पानी में भिगोई और उसे निचोड़ कर सिर से ले कर पैर तक लपेट दिया। सिर पर भी भीगा तोलिया रख कर ऊपर से दो कम्बल ओढा दिये। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने देखा कि मणिलाल का शरीर पसीने से तर हो गया है, ज्वर भी कम हो गया। आशा के विपरीत एकदम इतना परिवर्तन देख कर गाँधीजी बड़े प्रसन्न हुए। कस्तूरबा भी जो

घबरा रही थी, अब प्रसन्न हुई। दोनों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

डॉक्टर ने अन्ततः यह स्वीकारा कि चिकित्सा के नाम पर की जाने वाली हिंसा न तो आवश्यक है और न अमोघ है। बिना हिंसा का सहारा लिए भी रोग ठीक किये जा सकते हैं और अपेक्षाकृत कम समय तथा कम खर्च में।

2. यह उस समय की बात है, जब गाँधी जी और कस्तूरबा दक्षिण अफ्रीका में कई वर्ष रह चुके थे और वहाँ भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिये सत्याग्रह प्रारम्भ हो चुका था। बा को खूनी बवासीर के कारण बहुत अधिक रक्तस्राव होता था। इससे वे बहुत कमजोर हो गयी थी। गाँधीजी के डॉक्टर मिना ने ऑपरेशन कर उसे ठीक कर दिया। कुछ दिनों बाद भी कमजोरी विशेष बनी रही और वह उठ-बैठ भी नहीं सकती थी। एक बार तो वह बेहोश भी हो गयी। ऐसी स्थिति में डॉक्टर ने गाँधीजी से कहा - 'अब मेरी सम्मति में बिना माँस का शोरबा दिए कमजोरी दूर नहीं होगी'।

गाँधीजी ने डॉक्टर को बतलाया कि-'यह कभी माँस का व्यवहार नहीं कर सकती ओर मैं भी इसे धोखे से ऐसी चीज खाने को नहीं दे सकता। माँस न खाने से इसकी मृत्यु होती हो, तो भी मैं उसके लिए तैयार हूँ।'

गाँधीजी की बात सुन कर डॉक्टर ने कहा - कि जब तक आपकी पत्नी मेरी देख-रेख में रहेगी, तब तक मैं इसे माँस अथवा जो कुछ भी देना उचित होगा, दूँगा। यदि यह स्वीकार न हो, तो आप अपनी पत्नी को यहाँ से ले जाइये। रास्ते में ही यह मर जाए तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

गाँधीजी ने डॉक्टर से बहस करना बेकार समझा और बेटे को कह कर स्टेशन जाने के लिये रिक्शा भी मँगवा लिया। इससे पहले ही उन्होंने एक आदमी को अपने आश्रम 'फीनिक्स' में भेज कर अपने सहयोगी मि. वेस्ट से कहलवा दिया था, कि वे एक डोली, एक दूध की बोतल और कुछ आदमियों को ले कर स्टेशन पर आ जाएँ। बा को हिम्मत नहीं बँधानी पड़ी। उलटे उसी ने हिम्मत बँधाते हुए कहा-'मुझे कुछ नहीं होगा, आप चिन्ता न करें'। रिक्शा स्टेशन के भीतर तो जा नहीं सकता था और गाड़ी तक पहुँचने के लिए प्लेटफार्म पर बहुत दूर चलना पड़ता था। बा चलने में असमर्थ थी। गाँधीजी उसे अपनी गोद में उठा कर गाड़ी तक ले गये और सकुशल फीनिक्स जा पहुँचे। वहाँ केवल पानी से उपचार कर बा को निरोग और पुष्ट बना दिया।

इस प्रकार गाँधी जी ने अपनी दृढ़ आस्था और विश्वास के बल पर ही प्राकृतिक उपचार से अपने पुत्र तथा पत्नी के प्राणों की रक्षा की। उपचार में भी उन्होंने हिंसाजनित प्रयोगों का दृढ़ता से बहिष्कार किया।

पदार्थविज्ञान एवं परमाणुवाद

डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (वेदविज्ञान)
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर (राज.)

भारतीय दार्शनिकचिन्तन परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू विज्ञान भी रहा है अथवा यों भी कह सकते हैं कि अनेक वैज्ञानिक विषयों का चिन्तन भारतीय दर्शनवाङ्मय का केन्द्रीभूत तत्त्व रहा है। इस चिन्तन का सर्वाधिक सम्बन्ध पदार्थविज्ञान से स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि आधुनिक युग में विज्ञान से सजीव निर्जीव पदार्थों के तात्त्विक अध्ययन का ही तात्पर्य ग्रहण किया जाता है। भारतीय दर्शन आत्मविज्ञान के साथ साथ जिस अनात्मविज्ञान की पृष्ठभूमि को उपस्थापित करता है, वह मूलतः पदार्थवादी चिन्तनधारा का ही प्रवर्त्तन करती है। इस दार्शनिक पदार्थवादी चिन्तन का मूल आधार वेद ही है, अतः यह कहना अधिक उचित होगा कि वैदिक पदार्थवाद का ही पल्लवन भारतीय दर्शन में विशेष रूप से न्याय एवं वैशेषिक के अन्तर्गत सम्भव हुआ है।

वैदिक पदार्थवाद की पृष्ठभूमि पूर्णतया विज्ञानसम्मत रही है। उदाहरण के लिये आधुनिक वैज्ञानिकों ने परमाणु के संघटक पदार्थों में 'ईथर' नामक पदार्थ को स्वीकार किया है, जो घर्षण से रहित होता है तथा इसका प्रयोजन प्रकाश का प्रणयन कहा गया है, जिससे पदार्थ की आकृति में अन्यतर वैशिष्ट्य दिखलायी पड़ता है। वेद में भी प्रकाश का प्रणयन करने वाला तथा पदार्थ के परमाणुओं में स्थाई रूप से विद्यमान 'तेजन' नामक पदार्थ स्वीकार किया गया है, किन्तु वह घर्षण से रहित नहीं होता, जैसा कि अथर्ववेद में उल्लेख हुआ हैः-

''यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्''

इस मन्त्रांश से ज्ञात होता है कि तेजन एक ऐसा पदार्थ है, जो अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त है। वह द्युलोक में पृथ्वीलोक में भी विद्यमान है। इसका कार्य प्रकाश का प्रणयन ही है। ऋग्वेद में इसका अपरनाम मातरिश्वा है-'मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति इति मातरिश्वा' अर्थात् अन्तरिक्ष में गति को आयाम प्रदान करने वाला मातरिश्वा या तेजन द्रव्य ही सजीव-निर्जीव पदार्थों के परमाणुओं के मध्य विद्यमान रह कर उन्हें संघटित बनाये रखता है। इसे सूक्ष्म वायु कहा जा सकता है। वैदिक ऋषि घर्षण के अभाव में शब्दाभाव को स्वीकार करता है, अतः घर्षणरहित होने पर पत्थर इत्यादि द्रव्यों में टूटने पर, टकराने पर या प्रहार करने पर शब्द (ध्वनि) नहीं हो सकेगा। ऐसी स्थिति में इसमें घर्षण स्वीकार करना ही पड़ेगा। सजीवों में भी स्पन्द एवं संवेदना का कारक यही सूक्ष्म वायु है। इस प्रकार परमाणु का निर्जीव द्रव्योत्पत्ति में ही नहीं, अपितु सजीव द्रव्योत्पत्ति में भी कारणत्व अपरिहार्य रूप से सिद्ध होता है, जिसे नकारा

नहीं जा सकता।

जगत् की व्यावहारिक सत्ता जिसे स्वरूपतः सजीव एवं निर्जीव पदार्थों की समष्टि के रूप में देखा जाता है, का विश्लेषण विज्ञान एवं दर्शन दोनों का क्षेत्रिय लक्ष्य रहा है। दार्शनिकों का मानना है, कि पारमार्थिक सत्ता के बोध से पूर्व व्यावहारिक सत्ता का बोध अनिवार्य है। यह व्यावहारिक सत्ता हमें यह सोचने को बाध्य कर देती है, कि इसका मूल कारण क्या है? जगदुत्पत्ति के संदर्भ में निमित्त एवं उपादान दो कारण स्वीकार किये गये हैं। निमित्त कारण ईश्वर तथा उपादान कारण परमाणु हैं।

दार्शनिकों की तार्किक विचार-सरणि में जगदुत्पत्ति के सन्दर्भ में तीन सिद्धान्त मूलतः प्रवृत्त हुए हैंः- 1. आरम्भवाद, 2. विवर्त्तवाद एवं 3. परिणामवाद

आरम्भवाद के अनुसार पृथ्वी आदि के परमाणु से द्रव्यगुण आदि का आरम्भ होता है, जिससे श्रृंखलाभूत कार्य के रूप में द्रव्यों उत्पत्ति होती है।

विवर्त्तवाद के अनुसार परमार्थतः एक मात्र अद्वितीय ब्रह्म निर्गुण अनादि एवं अनिर्वचनीय होने पर भी अविद्या (माया) के सम्बन्ध से जगद्रूप विवर्त्त को आविर्भूत करता है, अतः अविद्या या माया ही जदगुत्पत्ति का उपादान कारण है। यहाँ निमित्त एवं उपादान में भेदाभेद है, जैसे जल से उत्पन्न लहर उससे पृथक् न होते हुए भी स्वरूपतः पृथक् प्रतीयमान होती है, वैसे ही अविद्या से उत्पन्न यह जगत् उससे पृथक् न होते हुए भी स्वरूपतः पृथक् प्रतीयमान होता है। इससे स्पष्ट होता है, कि द्रव्य जो उत्पन्न हुआ है वह विवर्त्त है। उसमें स्वरूपान्तर की प्रतीति ही भ्रम को उत्पन्न करती है।

परिणामवाद के अनुसार एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य से अवस्थापरिणाम के रूप में आविर्भूत होता है। इस प्रकार सांसारिक द्रव्योत्पत्ति की श्रृंखला निर्जीवों एवं सजीवों में निरन्तर चलती रहती है, बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से बीज की भाँति। परिणाम के दो प्रकार माने गये हैंः- विकृत परिणाम एवं अविकृत परिणाम। दूध का दही के रूप में परिवर्तित हो जाना विकृत परिणाम है, किन्तु स्वर्ण का आभूषण के रूप में परिवर्तित होना अविकृत परिणाम है। अविकृत परिणाम सदैव कारण रूप में ही रहता है, किन्तु विकृत परिणाम में कारणरूपता नष्ट हो जाती है।

दृश्यमान जगत् की भी कारणरूपता नहीं दिखायी देती, अतः यह भी विकृत परिणाम ही है, जो ब्रह्म का विकृत परिणाम कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में ब्रह्म नामक अदृश्य शक्ति या तत्त्वविशेष का विकृत परिणाम ही परमाणु है, जो आनन्त्य को प्राप्त हो कर साधर्म्य एवं वैधर्म्य की संप्राप्ति के अनन्तर परस्पर संघटन की क्रिया से द्रव्य को उत्पन्न करता है।

राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्

रचयिता
आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार
(महामहिम-राष्ट्रपति-सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्री
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वर स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरी
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

(गताङ्कादग्रे) **कीदृगयं व्यामोहो, जन-धन-काल-श्रम शक्ति-विध्वंसकः ।**
किं मानवदेहोऽयं, मिलित एतन्निकृष्टकार्य - करणार्थम् ? ॥71॥

जन, धन, काल, श्रम और शक्ति को विध्वस्त करने वाला राष्ट्र के शासकों का यह कैसा व्यामोह है ? क्या उनको यह मानव-शरीर इन निकृष्ट कार्यों को करने के लिए मिला है ?

Which kind of confusion is this that rulers destroy the people, money, time, work and power? Did they get this human body for such abominable work?

लङ्का-नाशेऽपि हेतु, रभूत् तच्छासक-रावण-दुर्दृढ एव ।
श्रीरामेण न योद्धुं , रावणं कः कः प्रबोधितवान् न जनः ? ॥72॥

लङ्का के विनाश में भी उसके शासनकर्ता रावण का दुर्दृढ़ ही कारण बना था। श्रीराम से युद्ध नहीं करने के लिए किस किस ने रावण को नहीं समझाया था ?

Lanka's fall was due to the weakness of its ruler Ravana. Who all did not explain to Ravana not to go to war with Rama? (so many people tried to convince Ravana not to fight Rama)

परं स्वार्थ- साधनेच्छु, रसौ रावणो न कस्यापि मेने वार्त्ताम् ।
अन्ते तत्फलमवापि , सर्वयापि लङ्कावासि - जनतया ॥73॥

परन्तु स्वार्थ साधने का इच्छुक बने हुए उस रावण ने किसी की भी बात नहीं मानी, अन्त में उसका फल सारी लङ्कावासी जनता ने पाया।

But because of selfish reasons Ravana did not listen to anybody and in the end its fruits the people of Lanka had to bear.

अतो ब्रूमो युद्धस्य , प्रमुख-हेतू राष्ट्रस्य शासका एव ।
अतः शासनीयाः प्राक्, शासका एव जनताद्वारा स्वीयाः ॥74॥

इसलिए हे गुरुदेव ! हम कहते हैं कि युद्ध का प्रमुख कारण राष्ट्र के शासक ही होते हैं, अतः जनता द्वारा प्रथम अपने शासकों को ही शासित करना चाहिए।

O Gurudev! It is in our opinion that the ruler is the main reason for the war. Therefore, firstly people should rule their rulers.

जात्याधृतारक्षणं, राष्ट्रैकतां भनक्तीति सर्व-विदितम् ।
नेतृभिः सह जनतया, किं नेदमारक्षणं समुन्मूल्यते ? ॥75॥

यह सर्वविदित है, कि जाति को आधार बना कर किया गया आरक्षण राष्ट्र की एकता को भङ्ग कर देता है, अतः नेताओं के साथ जनता द्वारा यह जाति पर आधारित किया जाने वाला आरक्षण क्यों नहीं उन्मूलित कर दिया जाता ?

It is proven that reservation on the base of the caste divides the country, therefore why don't the politicians unite with the people and abolish it? |75|

सवर्णेष्वसवर्णेषु , जात एव द्वेषो राष्ट्रैक्यशत्रुः ।
यज्जातं तज्जातं, भविष्ये त्विदमारक्षणं रोद्धव्यम् ॥76॥

सवर्णों और असवर्णों में इस प्रकार जाति को आधार बना कर किये जाने वाले आरक्षण से उत्पन्न हुआ द्वेष राष्ट्र की एकता का शत्रु बन गया है। अब तक जो हुआ वह हुआ, पर भविष्य में तो यह आरक्षण बन्द कर दिया जाना चाहिए ।

A resentment is created in the country by the reservation based on the creamy and non-creamy castes, which destroys the unity. What was done was done, but in the future reservation should be abolished.

(क्रमशः)

ISSN : 2582-6360

विविध साहित्यिक गतिविधियाँ

प्रकाशक : विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान - कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org